पेरिस
२५ जून, २००६

संदेश संख्या – ६७

अकर्त्ता–भाव

''अकमण्य नहीं, अकर्त्ता बनो।''–अर्थात् कार्य नहीं करने में तुम्हारी रुचि न हो बल्कि अकर्त्ता–भाव को उपलब्ध हो ।

लाहिड़ी–श्रुति का यह भी एक विस्फोट है। इसके पूर्व संदेश ८१ एवं ८६ में लाहिड़ी–श्रुति के चार अन्य विस्फोटों पर ध्यान किया गया है।

अकमण्यता है – मंदता, आलस्य एवं मान्यताओं में फँसे रहने की मूर्च्छा जबकि अकर्त्ताभाव है–अन्तर्दृष्टि, परिश्रमशीलता एवं यथार्थता की सजगता की प्रज्ञा।

जब मानव–शरीर में सीमित एवं विभेदकारी चित्तवृत्ति अर्थात् मन शान्त होता है, स्थिर होता है तभी अशरीरी सर्वव्यापक चैतन्य अविभाजित रूप से गतिशील होता है और वही जीवन है, वही दिव्यता है ।

''तुम्हारे शरीर में 'पिता' का क्या चिह्न है? यह गतिशीलता और स्थिरता है।''–ईशा मसीह

''ब्रह्माण्ड, स्थिर एवं गतिशील है ''–क्वांटम भौतिकी

''सृष्टि, स्थिति, लय''–वेदान्त

यहाँ 'स्थिरता' अकमण्यता नहीं है और न ही गतिशीलता अस्थिरता या उत्तेजना है। चैतन्य की जागृति ही 'गतिशीलता' है और इस स्थिति में कर्त्ताभाव (मैं–की मानसिकता) तिरोहित हो जाता है । यह मन–अहंकार के ताना–बाना से निःसृत प्रतिक्रिया या प्रतिशोध नहीं है । यह तो केवल क्रिया है । अकर्त्ता–भाव की इस शुद्ध क्रिया में किसी तरह का कृत्रिम व्यवहार नहीं होता, कोई पूर्वानुमान नहीं होता, कोई चिन्ता नहीं होती ।

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिस्यामि मा शुचः।।
(भगवद्गीता, १८:६६)

मन हमेशा ही निर्भरता की आवश्यकता महसूस करता है और उसकी माँग करता है । इसीलिए उसके द्वारा, स्वंय सर्वव्यापक चैतन्य (कृष्ण) द्वारा कहे गए इस गम्भीर वाणी का उपयोग भी सान्त्वना प्राप्ति हेतु किया जाता है जबकि इसकी वास्तविकता बिल्कुल भिन्न है।

''धर्म, धारणा, धरती''–ये सभी शब्द एक ही मूल से निकले हैं और उसका अर्थ है–''जो जीवन धारण करता हैं ।'' हमलोग सोचते हैं कि हमारा मन यानी कि हमारी धार्मिक एवं सामाजिक अवधारणायें, विचार, विश्वास–पद्धति, आशा, आसक्ति, तर्क, व्यवसाय, मंत्र, चालाकी, चालबाजी, अनुबंधन आदि ही हमें धारण करते हैं और हमारी रक्षा करते हैं । किन्तु वास्तविकता यह है कि मन एक भौतिक और यान्त्रिक प्रक्रिया है और यह मानव संबंधों के प्रत्येक स्तर पर विभाजन, विखण्डन एवं द्वन्द्व को प्रोत्साहित कर जीवन को खतरे में डालता है। मन अपने अहंकार और निहित स्वार्थ के कारण समझदारी को नष्ट कर देता है।

इसीलिए सर्वव्यापक चैतन्य कहते हैं–''तुम सभी प्रकार की मानसिक उन्मत्तता, विकृति और असंतुलन को बिना किसी शोक के त्याग दो और चैतन्य की शरण में आ जाओ। यह चैतन्य ही तुम्हारी रक्षा करता है, तुम्हारा भरण–पोषण करता है, तुम्हें धारण करता है और तुम्हें स्वस्थ रखता है। विभेदकारी चित्तवृत्ति यानी कि मन विभाजनों, परस्पर विपरीतों, द्वैतों एवं विखण्डनों से बना है । चैतन्य की जागृति तुम्हें इस मन के पापों से शर्त–रहित एवं पूर्णरूपेण मुक्त कर देती है ।''

यहाँ 'तुम' का अर्थ जीवन से है न कि मन से। यथार्थ तुम वह नहीं हो जो तुम सोचते हो, तुम मन और उससे उत्पन्न विचारो के जाल के बाहर हो।

बिना किसी इच्छा के प्रज्ञा में होना ही क्रिया योग है । खोजी अर्थात् ''मैं'' की मृत्यु ही सत्य का साक्षात्कार है। सच तो यह है कि खोजने को भी कुछ नहीं है, पाने को भी कुछ नहीं है, क्योंकि तुम वही हो जिसे तुम खोज रहे हो। तुम अर्थात् चैतन्य तो प्रत्येक श्वास में है।

''खोजी हो तो तुरन्त मिलिहै
पलभर की तलाश में ।''

जब खोजी (मन) का लय हो जाता है तब वास्तविक खोजी (जीवन) का उदय होता है और चैतन्य तत्क्षण घटित हो जाता है।

अतः क्रियायोग के सत्य को गहराई से समझना होगा। अन्यथा,

''हर तरकीब खोटी पड़ेगी,
जिन्दगी छोटी पड़ेगी। ''

अर्थात् सभी तकनीकें व्यर्थ हो जायेंगी और जिन्दगी समाप्त हो जायेगी।

हमलोगों में से अधिकांश के लिए प्रयोजन– रहित होकर, केवल कार्य के लिए कार्य करना मुश्किल लगता है एवं अवांछित भी। हमारा सामाजिक मूल्य हमें किसी प्रयोजन के लिए ही कुछ करना सिखाता है । मन की लेन–देन के इस सिद्धांत के कारण जीवन बंजर बन जाता है । प्रेमरहित यह जीवन कभी पूर्ण नहीं होता, हमेशा अपूर्ण ही रहता है। यही मनुष्य के दुःख का मूल कारण है।

जय लाहिड़ी –श्रुति